पेरिस
मई २४, २००६

सन्देश संख्या १६८

प्रभाव और उत्प्रेरण

मन और उसकी प्रशंसा या निन्दा ही चित्त अर्थात् ''मैं'' है, जो जीवन से अलग है; चित्तवृत्ति है, जो चैतन्य से अलग है; बुद्धि है, जो प्रज्ञा से अलग है यह मन सदैव दूसरे मन से प्रभावित होना चाहता है और यही मन दूसरे मन को भी प्रचार, विज्ञापन, लोभ, भय, के आन्दोलन या विश्वास आदि का आश्रय लेकर प्रभावित करना भी चाहता है । यही कारण है कि राजनेता, पुरोहित, गुरु, मनोविक्षिप्त, आतंकी, आक्रमणकारी, उग्रवादी, भविष्यवक्ता, ज्योतिषी–तथा भय एवं लोभ को प्रोत्साहित करने वाले, ये सभी तत्त्व मानव–जीवन में बरबादी एवं तबाही के कारक बन जाते हैं ।

जीवन दूसरे जीवन को न प्रभावित करता है और न ही कर सकता है प्रत्येक स्थिति में जीवन का अद्वितीय रूप से प्रस्फुटन होता है अैर उसकी पूर्णता में कोई विभाजन नहीं होता । जीवन विस्मयकारी एवं रहस्यपूर्ण विभिन्नताओं से पूर्ण है किन्तु इसमें किसी प्रकार का विभाजन नहीं है । यदि इसे देखा और समझा जा सके तो, समाज और उसकी साजिश के तहत आरोपित, मानसिक–''मैं'' तथा उसके प्रयासों से मनुष्य जाति मुक्त हो जाएगी और समझदारी की ऊर्जा को उपलब्ध हो जाएगी । और तभी मनुष्य चैतन्य के जागरण का स्पर्श पा सकेगा जो कि 'मैं' की विभेदकारी गतिविधियों के कारण सुप्तावस्था में रहता है ।

विद्युत–चुम्बकीय उत्प्रेरण की भाँति ही मनुष्य में उत्प्रेरण एक सहज एवं जीवन्त प्रक्रिया है । यदि किसी के अन्तर्जगत के भ्रामक द्वैत का लय हो चुका है और उसके सम्पर्क में दूसरा व्यक्ति आकर उसकी बातों को ध्यान से सुनता है तब उसके अन्तर्जगत का द्वैत भी जो 'मैं–पना' को जन्म देता है, उत्प्रेरण की प्रक्रिया से सहज ही समाप्त हो जा सकता है । वैसी स्थिति में, 'मैं' का केवल बाह्य स्वरूप ही नहीं बदलता अपितु उसका मौलिक परिवर्तन हो जाता है । अर्थात् 'मैं' से मुक्ति हो जाती है । फिर भी जो 'मैं' आभासित होता है वह केवल व्यावहारिक कारणों से पहचान के लिए होता है या केवल संयोजक के रूप में काम करता है । वह मानसिक खोज, दबाव, विभ्रान्ति या विकृति के लिए काम नहीं करता । एक स्टील का चुम्बक लोहे के टुकड़े में चुम्बकत्व का उत्प्रेरण कर सकता है । किन्तु यदि लकड़ी का टुकड़ा हो तो उसमें उत्प्रेरण सम्भव नहीं होगा । उसके बाद भी, लोहे के टुकड़े में चुम्बकत्व का उत्प्रेरण अस्थायी होता है, जबकि स्टील में वह स्थायी होता है । स्वाध्याय और तप द्वारा 'मैं–पना' पर ध्यान और क्रिया अभ्यास हमें मूल रूप से परिवर्तित कर स्टील या लोहे का चुम्बक बना सकता है । क्रियावान– भक्तों से जो संवाद मिलते हैं, उनसे मालूम होता है कि ऐसी उत्प्रेरण –प्रक्रिया घटित हो रही है और यह गुरू–प्रक्रिया भी उत्प्रेरण–प्रक्रिया ही है ।

इस प्रक्रिया को हमलोग एक क्रियावान–भक्त जो बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (वाराणसी) से पी.एच. डी. (भौतिक विज्ञान) हैं, में देख सकते हैं । उन्होंने समझदारी की ऊर्जा से निकली एक कविता भेजी है, जो यहाँ प्रस्तुत है :–

तकनीकी दुनिया में हमारे समूह द्वारा किया जा रहा अनुसन्धान शरीर में निहित आनुवंशिक और शारीरिक लय (rhythm) से सम्बन्धित है जो प्रकाश, अंधकार, हार्मोन्स और अन्य ऊर्जा के प्रति अनुक्रिया (respond) करता है । मस्तिष्क के जो केन्द्र संगीत के लय का बोध करते हैं, उन केन्द्रों से इनसे सम्बन्धित केन्द्र भिन्न माने जाते हैं । हमारा अनुसन्धान दर्शाता है कि हमलोग कितना कम जानते हैं या समझते हैं । इन दोनों लयों के प्रति हमारा शरीर अत्यन्त गहरे एवं जटिल तल पर जाकर अनुक्रिया करता है जबकि हमारा क्षुद्र मन कभी नहीं कर सकता ।

इस शरीर द्वारा गुरूजी के कुछ सन्देशों को सुना गया है, उसका सार यह है :–

पुण्यात्मा बनने का प्रयास मत करो,
पापी बनने का आयास मत करो,
हारने से बचाव क्यों?
जीतने का चुनाव क्यों?
चाह का दबाव क्यों? जीवन को खिलने दो,
संघर्ष का प्रभाव क्यों, 'मन' को पिघलने दो,
दूर चलो ''मैं'' और 'चित्तवृत्तियों' के जंगल से
स्पर्धा के दंगल औ शक्ति के अमंगल से
छूओ प्रकाश, औ अंधरे को खो जाओ
'कुछ नहीं' हो जाओ, 'जीवन' का गीत गाओ ।
युद्ध को जगह न दी तो जय क्या, पराजय क्या?
कामना ही मर गयी तो लाभ–हानि का भय क्या?
प्रज्ञा की ऊर्जा में बहो, औ बहाओ,
अन्तर–आनंद–गीत गाओ औ सुनाओ ।
गाते यह गीत, संघर्ष सभी मिटते हैं,
गायक भी इसके समक्ष कहाँ टिकते हैं,
जीवन और प्रेम को गाने दो निज गीत
श्रोता बिन सुनो तुम भी मौन का संगीत मीत !

शाश्वत कविता की जय ।
प्रेम के गीत की जय ।
'कोई नहीं' के गीत की जय ।